1935 का भारत सरकार अधिनियम – एक विश्लेषण

Rakesh Hooda
M.A. & NET (History)
VPO Sanghi, District – Rohtak (HR.)

शोध आलेख सारः चूंकि ब्रिटिश सरकार ने भारत पर अपने शासन को बनाये रखने के लिए काफी प्रयास किये, फिर भी राष्ट्रीय आन्दोलन के दबाव के कारण उसे झुकना पड़ा और कई ऐसे निर्णय लेने पड़े जो वह स्वयं नहीं चाहती थी। वस्तुतः वर्ष 1919 के अधिनियम के समय ही इस बात के संकेत मिलने लग गए थे कि ब्रिटिश सरकार भारत के भविष्य पर कोई निर्णय अवश्य लेगी। चूंकि 1919 के अधिनियम की प्रस्तावना में भी यह कहा गया था कि आगामी समय में एक आयोग द्वारा भारत में पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना के पक्ष या विपक्ष में निर्णय लिया जायेगा और कई संवैधानिक गतिरोधों के बावजूद अन्ततः वर्ष 1935 में ब्रिटिश सरकार ने अपना अन्तिम व निर्णायक निर्णय इस अधिनियम के रूप में प्रस्तुत करके भारत की स्वाधीनता की दिशा में एक कदम रखा। यह काफी लम्बा व जटिल प्रलेख था और इसमें ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता कायम रखी गई थी। इसमें एक संघीय शासन प्रणाली की व्यवस्था थी तथा मताधिकार के विस्तार के साथ–साथ साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को भी विस्तृत आधार प्रदान किया गया था। अतः प्रस्तुत शोध पत्र में 1935ई. के भारत सरकार अधिनियम के मुख्य प्रावधानों का विश्लेषण किया गया है।

मूलशब्द– ब्रिटिश सरकार, उत्तरदायी शासन, ब्रिटिश संसद, संघीय व्यवस्था, साम्प्रदायिकता, मताधिकार, द्वैध शासन प्रणाली, प्रांतीय स्वायत्तता, शक्ति विभाजन।

भूमिकाः चूंकि 1919ई. के अधिनियम द्वारा यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि ब्रिटिश सरकार का ध्येय भारत में पूर्ण उत्तरदायी सरकार की तत्काल स्थापना करना नहीं था।[1] इस समय भारतीय जनमानस और सभी राजनीतिक दल ब्रिटिश सरकार के इस निर्णय से असन्तुष्ट थे। कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य चाहती थी और उसने मुस्लिम लीग के साथ मिलकर एक आन्दोलन भी चलाया। 1929 में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य की मांग ने ब्रिटिश सरकार को यह सोचने पर विवश कर दिया कि अब भारतीयों की स्वशासन की मांग की अधिक दिनों तक अनदेखी नहीं की जा सकती। इसी तरह भारत के विभिन्न भागों में साईमन कमीशन का भी पूर्ण विरोध हुआ। अतः ब्रिटिश सरकार ने भारत के भविष्य को ध्यान में रखकर संविधान निर्माण हेतु तीन गोलमेज सम्मेलन भी बुलाए, परन्तु इनका कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकला। तीसरे गोलमेज सम्मेलन में तो कांग्रेस ने भाग ही नहीं लिया और अन्ततः 1933 में मार्च महीने में ब्रिटिश सरकार ने एक श्वेत पत्र जारी किया। इसके तहत भारत में केन्द्र में द्वैध शासन व्यवस्था तथा प्रान्तों में उत्तरदायी सरकारों की स्थापना की व्यवस्था की गई। परन्तु इसके खिलाफ सम्पूर्ण भारतवर्ष में आक्रोश फैल गया और ब्रिटिश सरकार की एक समिति की रिपोर्ट के आधार पर भारत सरकार अधिनियम, 1935 पास हुआ। इसके

तहत विभिन्न प्रान्तों और राजाओं–महाराजाओं की रियासतों को मिलाकर भारत को एक गणतन्त्र का दर्जा दिया गया।[2]

वास्तव में अगस्त 1935 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा अन्ततः वह लम्बी और यंत्रणादायक प्रक्रिया समाप्त हुई जो आठ वर्ष पूर्ण साईमन कमीशन की नियुक्ति के साथ शुरू हुई थी।[3] यह अधिनियम भारतीय संवैधानिक विकास के इतिहास में एक बड़ा महत्वपूर्ण कदम था। नवम्बर 1932 में जब कांग्रेस मंझधार में थी तब लन्दन में तीसरे गोलमेज सम्मेलन में हुए विचार विमर्श का ही यह परिणाम था जो अन्ततः 1935 के भारत सरकार अधिनियम के रूप में सामने आया। कांग्रेस ने इसे पूरी तरह निराशाजनक कहकर इस कानून की निन्दा की। इसके संघीय पक्ष को कभी लागू नहीं किया गया, परन्तु प्रान्तीय पक्ष जल्दी ही लागू कर दिया गया।[4]

1935 के भारत सरकार अधिनियम की व्यवस्थाएं– यह काफी लम्बा व विस्तृत दस्तावेज था जो भारत में उत्तरदायी शासन स्थापना की दिशा में कारगर कदम माना गया। इसकी प्रमुख व्यवस्थाएं निम्नलिखित थी–

- इसमें 1919ई. के अधिनियम वाली प्रस्तावना ही जोड़ दी गई।
- इसमें 321 धाराएं और 10 परिशिष्ट थे।[5]
- इसमें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के ढांचे का विस्तृत विवरण दिया गया और यह एक काफी लम्बा प्रलेख था।
- इसके अन्तर्गत ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया और संसद को संविधान में सुधार करने, बदलने व रद्द करने का अधिकार प्राप्त था।[6]
- इसमें प्रांतीय स्वायत्तता की स्थापना की गई और प्रांतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित किया गया।
- इस अधिनियम के तहत प्रान्तों में प्रचलित द्वैध शासन प्रणाली को समाप्त करके केन्द्र में लागू कर दिया गया।[7]
- इसके तहत भारतीय रियासतों को प्रथम ब्रिटिश शासन के साथ समान संघीय व्यवस्था में लाने का प्रयास किया गया।
- इसमें शक्ति विभाजन की दृष्टि से तीन सूचियां निर्मित की गई। संघीय सूची में 59, प्रांतीय सूची में 54 तथा समवर्ती सूची में 36 विषय रखे गए।[8]
- इसके तहत एक संघीय न्यायालय की भी व्यवस्था की गई, परन्तु यह अपील का सर्वोच्च न्यायालय नहीं था। इसकी जगह प्रिवी परिषद ही अपील का सर्वोच्च न्यायालय थी।
- इस अधिनियम द्वारा भारत परिषद को समाप्त करके भारत सचिव की मदद के लिए परामर्शदाताओं की व्यवस्था की गई।[9]

- इसके अन्तर्गत केन्द्रीय विधानमण्डलों की संख्या में वृद्धि की गई। अब केन्द्र में राज्यसभा के सदस्यों की संख्या 260 तथा विधानमण्डल के सदस्यों की संख्या 375 निश्चित की गई।[10]
- इसके द्वारा प्रांतीय विधानसभा के सदस्यों की संख्या भी दोगुणी कर दी गई और 6 प्रान्तों में दो सदनीय विधानमण्डलों का गठन कर दिया गया।
- इसके तहत प्रान्तों के लिए मताधिकार को विस्तृत बनाते हुए 10 प्रतिशत लोगों को मताधिकार प्रदान कर दिया गया।
- इस अधिनियम के द्वारा गवर्नर–जनरल और गवर्नरों को विशेष उतरदायित्व प्रदान करते हुए स्वविवेक का अधिकार भी दिया गया।
- इस अधिनियम के तहत भी ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली का विस्तार किया और हरिजनों के लिए पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति अपनाई गई। चूंकि 1932 का कम्यूनल अवार्ड ही इसकी नींव डाल चुका था, अब अधिक विस्तार हुआ।[11]
- इसके तहत म्यांमार को भारत से अलग कर दिया गया। अदन को भारत सरकार के नियंत्रण से निकालकर इंग्लैण्ड के उपनिवेश विभाग के अन्तर्गत कर दिया गया। बरार प्रान्त को वैधानिक दृष्टि से हैदराबाद के निजाम की सत्ता के अधीन कर दिया।
- इस अधिनियम में संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत केवल एकल नागरिकता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया।
- इसके अनुसार भारतीय हाई कमीशनर की नियुक्ति, वेतन, नौकरी, आदि की शर्तों को गवर्नर जनरल अपने व्यक्तिगत निर्णय से करता था।[12]

गृह–सरकार की व्यवस्था– इस अधिनियम के अन्तर्गत गृह–सरकार का ढांचा लगभग पूर्ववर्ती ही बना रहा। सैद्धान्तिक रूप से ब्रिटिश संसद अन्तिम रूप से भारत के कल्याण, राजनीतिक विकास और सुशासन के लिए उत्तरदायी थी। इसमें सबसे महत्वपूर्ण बदलाव यह आया कि भारत परिषद की जगह परामर्शदाताओं की व्यवस्था कर दी गई। इस अधिनियम के कानूनी आधार पर ब्रिटिश ताज ने भारत की समस्त शक्तियां व अधिकार अपने हाथों में लेकर विशेषाधिकार भी अपने पास ही रखे। विशेषाधिकारों में भारत की सम्पूर्ण भूमि व खानों पर उसका ही स्वामित्व स्वीकार किया गया। वह उपाधियां देने, क्षमा दान देने, प्राथमिकता का क्रम निर्धारित करने, विदेशी मामलों पर नियंत्रण तथा युद्ध व शान्ति की घोषणा का अधिकार रखता था।[13]

इस अधिनियम ने भारत सचिव की शक्तियों को भी बदल दिया। उसे गवर्नर जनरल और गवर्नरों के उपर अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण का अधिकार था। वह सपरिषद आदेश जारी कर सकता था। उसे भारतीय मामलों की समस्त सूचनाएं ब्रिटिश संसद को देने, गवर्नर जनरल और गवर्नरों को दिए जाने वाले आदेशों को ब्रिटिश संसद के सामने रखने, कुछ सेवाओं के लिए भर्ती करने तथा पद की सुरक्षा का भी

अधिकार था। वह भारतीय मामलों में ब्रिटिश ताज का संवैधानिक परामर्शदाता था। अतः भारतीय संविधान और शासन में उसका स्थान बड़े महत्व और प्रधानता का था।

1935 के अधिनियम के संघीय योजना– इस व्यवस्था में ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों को शामिल होने की योजना प्रस्तावित थी, परन्तु व्यवहार में यह लागू नहीं हो सकी। प्रस्तावित संघीय योजना में 11 गर्वनरों के प्रान्त, 6 चीफ कमिशनरों के प्रान्त तथा देशी राज्यों को शामिल करने की व्यवस्था की गई थी। इसमें संघ की स्थापना के लिए संसद के दोनों सदनों को सम्राट से प्रार्थना की आवश्यकता थी। इसमें संविधान में परिवर्तन का अधिकार ब्रिटिश संसद को दिया गया तथा केन्द्र राज्यों में शक्ति विभाजन भी स्पष्ट था। संघ राज्यों के आपसी विवादों को हल करने के लिए एक संघीय न्यायालय भी था। संघ सरकार के दो प्रमुख अंग– संघीय कार्यपालिका तथा संघीय विधानपालिका रखे गए। देशी राज्यों को संघीय विधानमण्डल की संघी सभा में 125 सदस्य तथा राज्यसभा में 104 सदस्य भेजने का अधिकार था। इसी तहर संघीय व्यवस्था में एक कार्यपालिका की भी व्यवस्था की गई, जिसका प्रमुख गवर्नर जनरल था।[14] उसकी नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट द्वारा की जाती थी।

प्रान्तीय स्वायत्तता की व्यवस्था– इस अधिनियम में प्रान्तों से द्वैध–शासन समाप्त करे प्रान्तीय स्वायत्तता लागू की गई।[15] अब प्रान्तों को पृथक वैद्यानिक अस्तित्व प्रदान किया गया और उन पर से केन्द्रीय नियन्त्रण कमजोर कर दिया गया। अब प्रान्तीय सरकारें केन्द्र के हस्तक्षेप के बिना भी काननू बनाने की शक्ति रखती थी। प्रान्त की कार्यपालक शक्ति सम्राट के प्रतिनिधि में निहित थी। गवर्नर को परामर्श व सहायता देने के लिए मन्त्रिपरिषद का भी प्रावधान था। प्रशासनिक कार्यों में गवर्नर को स्वविवेक की शक्तियां भी प्राप्त थी, परन्तु कुछ मामलों में उसे मंत्रीपरिषद से परामर्श लेना अनिवार्य था। इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में व्यापक मताधिकार के आधार पर निर्वाचित विधानसभा की स्थपना की गई और वहां स्वतन्त्र कार्यपालिका, उच्च न्यायालय और प्रान्तीय सेवाएं स्थापित की गई।

मूल्यांकन– अंतः 1935 के अधिनियम ने भारत में एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की दिशा में महत्वपूर्ण कदम रखा। यद्यपि भारत के वायसराय लिलिथगो ने तो बाद में पश्चाताप की भावना से यहां तक भी कहा कि 1935 का अधिनियम इसलिए पास किया गया ताकि भारत पर ब्रिटिश प्रमुख कायम रहे तथा भारतीयों के हित में संविधान में संशोधन करना हमारी नीति नहीं थी और न ही हम भारतीयों को सत्ता सौंपने की जल्दबाजी में थे।[16] फिर भी यह अधिनियम प्रांतीय स्वायत्तता की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। चूंकि इसकी भारतीय समाज के सभी वर्गों, दलों तथा समुदायों द्वारा आलोचना भी की गई। हिन्दू महासभा ने इसे भारतीय राष्ट्रवाद में बाधक तथा प्रतिक्रियावादी माना। फिर भी हम इस सत्य को नकार नहीं सकते कि राजनीतिक और संवैधानिक दृष्टि से भारत के 11 राज्यों ने प्रथम बार संसदीय स्वशासन का अनुभव प्राप्त किया और शक्ति–पृथककरण पर आधारित एक संघीय व्यवस्था भारत में लागू करने के भी प्रयास हुए। आगे

चलकर भारत के स्वशासन प्राप्ति के प्रयासों में इस अधिनियम ने सकारात्मक वातावरण पैदा किया और 1947 में भारत में राजनीतिक सत्ता का हस्तांतरण भी इसी अधिनियम के तहत किया गया। जब हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान का निर्माण किया तो 1935 के अधिनियम की काफी व्यवस्थाएं नए संविधान में शामिल की जो इसकी उपयोगिता को दर्शाता है।

सन्दर्भ सूची–

---

[1] शिवकुमार गुप्त, **आधुनिक भारत का इतिहास,** (1919–1950ई.), पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1999, पृ. 215.

[2] सोहनराज तातेड़, **भारतीय नवजागरण एवं राष्ट्रीय आन्दोलन,** खण्डेलवाल पब्लिशर्स, जयपुर, 2014, पृ . 193.

[3] सुमित सरकार, **आधुनिक भारत (1885–1947),** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 357.

[4] विपिन चन्द्र, **आधुनिक भारत का इतिहास,** ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 308.

[5] आर.सी.वरमानी **भारत में उपनिवेशवाद तथा राष्ट्रवाद,** गीतांजलि पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2003, पृ. 270.

[6] आर.सी.अग्रवाल एवं महेश भटनागर, **भारतीय संविधान का विकास का राष्ट्रीय आन्दोलन,** एस.चन्द एण्ड कं., नई दिल्ली, 2013, पृ. 220.

[7] वीरकेश्वर प्रसाद सिंह, **भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास,** ज्ञानंदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ . 335.

[8] आर.सी.वरमानी, **पूर्वोक्त**, पृ. 271.

[9] दीनानाथ वर्मा, **भारत में उपनिवेशवाद तथा राष्ट्रवाद**, ज्ञानंदा प्रकाशन, नई दिल्ली,2000, पृ. 261.

[10] आर.सी.अग्रवाल एवं महेश भटनागर, **पूर्वोक्त**, पृ. 221.

[11] विपिन चन्द्र, **भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,** हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2015, पृ. 395.

[12] शिवकुमार गुप्त, **पूर्वोक्त**, पृ. 226.

[13] वीरकेश्वर प्रसाद सिंह, **पूर्वोक्त**, पृ. 338.

[14] शिवकुमार गुप्त, **पूर्वोक्त**, पृ. 230.

[15] दीनानाथ वर्मा, **पूर्वोक्त**, पृ. 268.

[16] सोहनराज तातेड़,**पूर्वोक्त**, पृ. 193.